International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | Website: https://ijaar.co.in/
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

Original Article

'पठार पर कोहरा' उपन्यास में आदिवासी जीवन का यथार्थ

अर्चना कुमारी

शोधार्थी, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग

वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय आरा, बिहार

Manuscript ID: IJAAR-130130

ISSN: 2347-7075
Impact Factor – 8.141

Volume - 13
Issue - 1
September- October 2025
Pp. 212 - 221

Submitted: 16 Sept 2025
Revised: 23 Oct 2025
Accepted: 25 Oct 2025
Published: 31 Oct 2025

Corresponding Author: *अर्चना कुमारी*

Quick Response Code:

Website: https://ijaar.co.in/

DOI: 10.5281/zenodo.21238656

DOI Link: https://doi.org/10.5281/zenodo.21238656

सारांश:

हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन का चित्रण केवल सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति नहीं है, बल्कि भारतीय समाज के उस उपेक्षित और वंचित वर्ग की ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक अस्मिता को स्वर प्रदान करने का एक महत्वपूर्ण साहित्यिक प्रयास भी है। आधुनिक हिंदी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श ने एक सशक्त वैचारिक धारा के रूप में अपनी पहचान स्थापित की है, जिसके अंतर्गत आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, सांस्कृतिक विरासत, प्रकृति के साथ उसके आत्मीय संबंध, आर्थिक विषमताएँ, सामाजिक शोषण तथा विकास के नाम पर होने वाले विस्थापन जैसे ज्वलंत प्रश्नों को गंभीरता से प्रस्तुत किया गया है। इसी संदर्भ में ***'पठार पर कोहरा'*** *एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, जिसमें आदिवासी समाज के बहुआयामी जीवन का अत्यंत संवेदनशील, यथार्थपरक तथा मानवीय चित्रण किया गया है।*

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में चित्रित आदिवासी जीवन के विविध आयामों का समग्र अध्ययन करना है। उपन्यास में आदिवासी समाज के सामाजिक संगठन, आर्थिक स्थिति, सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक आस्थाओं, लोकविश्वासों, प्रकृति-आधारित जीवन-दृष्टि तथा सामुदायिक जीवन-मूल्यों का अत्यंत जीवंत चित्रण मिलता है। लेखक ने आदिवासी समुदाय को केवल शोषित अथवा पिछड़े समाज के रूप में प्रस्तुत नहीं किया है, बल्कि उन्हें अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक पहचान, श्रम-संस्कृति, सामुदायिक चेतना तथा प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना से संपन्न समाज के रूप में चित्रित किया है। यही दृष्टि इस उपन्यास को अन्य आदिवासी-केंद्रित रचनाओं से विशिष्ट बनाती है।

उपन्यास में यह भी स्पष्ट रूप से रेखांकित किया गया है कि आधुनिक विकास, औद्योगीकरण, खनन परियोजनाओं, वन कानूनों, भूमंडलीकरण तथा बाजारवादी शक्तियों के कारण आदिवासी समाज के पारंपरिक जीवन पर गहरा संकट उत्पन्न हुआ है। जल, जंगल और जमीन पर उनके पारंपरिक अधिकारों का हनन, प्राकृतिक संसाधनों पर बाहरी शक्तियों का नियंत्रण, प्रशासनिक भ्रष्टाचार,

International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | Website: https://ijaar.co.in/
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

महाजनी शोषण, राजनीतिक उपेक्षा तथा सांस्कृतिक विघटन जैसी समस्याएँ आदिवासी जीवन को निरंतर प्रभावित कर रही हैं। लेखक इन परिस्थितियों का केवल वर्णन ही नहीं करता, बल्कि उनके सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारणों का भी विश्लेषण करता है और आदिवासी अस्मिता के प्रश्न को व्यापक राष्ट्रीय विमर्श से जोड़ता है।

इस शोध-पत्र में यह प्रतिपादित करने का प्रयास किया गया है कि 'पठार पर कोहरा' आदिवासी जीवन का केवल कथात्मक दस्तावेज़ नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक संरक्षण, मानवीय गरिमा तथा लोकतांत्रिक अधिकारों की स्थापना का साहित्यिक घोषणापत्र भी है। उपन्यास यह स्थापित करता है कि आदिवासी समाज का विकास उसकी संस्कृति, परंपराओं, प्राकृतिक संसाधनों तथा सामुदायिक जीवन-मूल्यों की रक्षा किए बिना संभव नहीं है। लेखक आदिवासी जीवन के यथार्थ को करुणा, संवेदना और संघर्ष—तीनों स्तरों पर चित्रित करते हुए यह संदेश देता है कि विकास तभी सार्थक है जब उसमें समाज के सबसे वंचित समुदायों की भागीदारी, सम्मान और अधिकार सुरक्षित हों।

अतः 'पठार पर कोहरा' हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है, जो आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, सांस्कृतिक अस्मिता, सामाजिक यथार्थ तथा बदलते समय की चुनौतियों को गहन संवेदनात्मक और वैचारिक स्तर पर अभिव्यक्त करता है। यह उपन्यास केवल साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, बल्कि समाजशास्त्रीय, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मानवाधिकार संबंधी अध्ययन की दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन इसी बहुआयामी परिप्रेक्ष्य में उपन्यास का विश्लेषण करते हुए आदिवासी जीवन के वास्तविक स्वरूप, उसकी चुनौतियों तथा समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करने का प्रयास करता है।

मुख्य शब्द: आदिवासी विमर्श, आदिवासी जीवन, पठार पर कोहरा, सामाजिक यथार्थ, आर्थिक विषमता, सांस्कृतिक अस्मिता, जंगल, जल, जमीन, विस्थापन, विकास, शोषण, प्रकृति, लोकसंस्कृति, सामुदायिक जीवन।

Creative Commons

Creative Commons (CC BY-NC-SA 4.0)

This is an open access journal, and articles are distributed under the terms of the Creative Commons Attribution-NonCommercial-ShareAlike 4.0 International License (CC BY-NC-SA 4.0), *which permits others to remix, adapt, and build upon the work non-commercially, provided that appropriate credit is given and that any new creations are licensed under identical terms.*

How to cite this article:

अर्चना कुमारी. (2025). 'पठार पर कोहरा' उपन्यास में आदिवासी जीवन का यथार्थ. International Journal of Advance and Applied Research, 13(1), 212 - 221.

https://doi.org/10.5281/zenodo.21238656

International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | *Website: https://ijaar.co.in/*
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

प्रस्तावना:

भारतीय समाज अपनी बहुलतावादी संरचना, सांस्कृतिक विविधता तथा सामाजिक बहुरूपता के कारण विश्व के सबसे समृद्ध समाजों में माना जाता है। यहाँ विभिन्न जातीय, भाषायी, धार्मिक तथा सांस्कृतिक समुदायों ने अपनी विशिष्ट पहचान के साथ सह-अस्तित्व की परंपरा विकसित की है। इन्हीं समुदायों में आदिवासी समाज भारतीय सभ्यता का सबसे प्राचीन और मूलनिवासी समुदाय माना जाता है, जिसने हजारों वर्षों से प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन-पद्धति को अपनाया है। आदिवासी जीवन-दर्शन में प्रकृति केवल जीवन-निर्वाह का साधन नहीं, बल्कि आस्था, संस्कृति, इतिहास और अस्तित्व का आधार है। जंगल, पर्वत, नदियाँ, झरने, पशु-पक्षी और धरती उनके सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन के अभिन्न अंग हैं। उनके लोकगीत, लोककथाएँ, नृत्य, पर्व-त्योहार, धार्मिक मान्यताएँ तथा सामुदायिक जीवन-व्यवस्था प्रकृति के साथ उनके गहरे आत्मीय संबंधों को अभिव्यक्त करती हैं।

भारतीय संविधान ने अनुसूचित जनजातियों को विशेष संरक्षण और समान अधिकार प्रदान किए हैं, फिर भी वास्तविक जीवन में आदिवासी समुदाय आज भी अनेक प्रकार की चुनौतियों का सामना कर रहा है। औपनिवेशिक शासन द्वारा लागू किए गए वन कानूनों, प्राकृतिक संसाधनों पर राज्य के नियंत्रण तथा खनिज संपदा के दोहन ने आदिवासी समाज के पारंपरिक जीवन को गंभीर रूप से प्रभावित किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी विकास, औद्योगीकरण, बड़े बाँधों, खनन परियोजनाओं, वन संरक्षण योजनाओं तथा शहरीकरण के नाम पर लाखों आदिवासी अपने पैतृक निवास, जल, जंगल और जमीन से विस्थापित हुए। विडंबना यह रही कि जिन प्राकृतिक संसाधनों के वे सदियों से संरक्षक रहे, उन्हीं पर उनका अधिकार धीरे-धीरे सीमित कर दिया गया। परिणामस्वरूप गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, कुपोषण, पलायन, सामाजिक उपेक्षा तथा सांस्कृतिक विघटन जैसी समस्याएँ उनके जीवन का हिस्सा बन गईं।

समकालीन हिंदी साहित्य ने इन जटिल सामाजिक यथार्थों को गंभीरता से अभिव्यक्त किया है। विशेषकर हिंदी उपन्यासों में आदिवासी जीवन के विविध पक्षों का चित्रण केवल सहानुभूति तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक अस्मिता, पर्यावरणीय संतुलन तथा लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रश्नों से भी जुड़ा हुआ है। आदिवासी विमर्श ने हिंदी साहित्य को एक नई दृष्टि प्रदान की है, जिसके माध्यम से उन समुदायों की आवाज़ साहित्य के केंद्र में पहुँची, जिन्हें लंबे समय तक मुख्यधारा के इतिहास और साहित्य में अपेक्षित स्थान नहीं मिला। यह विमर्श आदिवासी समाज को दया या रोमांच के विषय के रूप में नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र सांस्कृतिक इकाई, संघर्षशील समुदाय और

International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | *Website: https://ijaar.co.in/*
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

मानवीय गरिमा से सम्पन्न समाज के रूप में स्थापित करता है।

इसी साहित्यिक परंपरा में **'पठार पर कोहरा'** एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपन्यास के रूप में सामने आता है।[1] यह उपन्यास आदिवासी जीवन के यथार्थ को अत्यंत संवेदनशील, प्रामाणिक और बहुआयामी दृष्टि से प्रस्तुत करता है। लेखक ने आदिवासी समाज को बाहरी दृष्टि से देखने के बजाय उनके जीवनानुभवों, संघर्षों, सांस्कृतिक चेतना तथा अस्तित्वगत संकटों को भीतर से समझने का प्रयास किया है। उपन्यास में आदिवासी जीवन का चित्रण किसी काल्पनिक रोमानी परिवेश में नहीं, बल्कि वास्तविक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में किया गया है। यही कारण है कि यह रचना आदिवासी जीवन की समस्याओं को केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय और राजनीतिक संदर्भों में भी विश्लेषित करती है।

'पठार पर कोहरा' यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी समाज का संकट केवल आर्थिक पिछड़ेपन तक सीमित नहीं है। यह संकट उनकी सांस्कृतिक पहचान, पारंपरिक ज्ञान-व्यवस्था, प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार, सामुदायिक जीवन-पद्धति तथा अस्तित्व की रक्षा से भी जुड़ा हुआ है। विकास की वर्तमान अवधारणा ने जहाँ एक ओर आधुनिक सुविधाओं का विस्तार किया है, वहीं दूसरी ओर आदिवासी समाज के सामने विस्थापन, पर्यावरणीय असंतुलन, सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक असुरक्षा जैसी गंभीर चुनौतियाँ भी उत्पन्न की हैं। उपन्यास इन विरोधाभासों को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से उद्घाटित करता है और यह प्रश्न उठाता है कि यदि विकास की प्रक्रिया किसी समुदाय की पहचान, संस्कृति और अस्तित्व को ही समाप्त कर दे, तो उस विकास की वास्तविक सार्थकता क्या रह जाती है।[2]

यह उपन्यास केवल शोषण और पीड़ा का आख्यान नहीं है, बल्कि आदिवासी समाज की जीवटता, श्रमशीलता, सामुदायिक एकता, प्रकृति-प्रेम, सांस्कृतिक स्वाभिमान तथा प्रतिरोध की चेतना का भी सशक्त दस्तावेज़ है। लेखक ने यह सिद्ध किया है कि आदिवासी समाज आधुनिक सभ्यता का विरोधी नहीं, बल्कि ऐसा समुदाय है जो विकास और प्रकृति के बीच संतुलन स्थापित करने की जीवन-दृष्टि प्रस्तुत करता है। उनके जीवन-मूल्य आज पर्यावरण संरक्षण, सतत विकास तथा मानवीय सह-अस्तित्व जैसे वैश्विक प्रश्नों के संदर्भ में और भी अधिक प्रासंगिक प्रतीत होते हैं।

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य **'पठार पर कोहरा'** उपन्यास में चित्रित आदिवासी जीवन के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक यथार्थ का समग्र विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में विशेष रूप से आदिवासी अस्मिता, जल-जंगल-जमीन का प्रश्न, विस्थापन, सांस्कृतिक संरक्षण, स्त्री की स्थिति, प्रकृति के साथ आदिवासी

International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | Website: https://ijaar.co.in/
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

संबंध, शोषण की संरचना तथा समकालीन विकास-नीतियों के प्रभाव का विश्लेषण किया जाएगा। साथ ही यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया जाएगा कि यह उपन्यास हिंदी के आदिवासी विमर्श को किस प्रकार नई वैचारिक दिशा प्रदान करता है तथा वर्तमान सामाजिक संदर्भों में इसकी प्रासंगिकता किस रूप में स्थापित होती है।[3]

लेखक की रचनात्मक दृष्टि:

'पठार पर कोहरा' के रचनाकार ने आदिवासी जीवन को अत्यंत निकटता से समझने और उसे संवेदनात्मक प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। लेखक की दृष्टि न तो आदिवासी समाज का रोमानीकरण करती है और न ही उसे केवल दयनीय स्थिति में चित्रित करती है। इसके विपरीत वह आदिवासी समुदाय को संघर्षशील, स्वाभिमानी, श्रमशील और प्रकृति के प्रति उत्तरदायी समाज के रूप में स्थापित करता है। लेखक का विश्वास है कि किसी भी समुदाय को समझने के लिए उसके आर्थिक पक्ष के साथ-साथ उसकी संस्कृति, लोकविश्वास, जीवन-मूल्य, सामुदायिक संरचना और ऐतिहासिक अनुभवों को समझना आवश्यक है। इसलिए उपन्यास में सामाजिक यथार्थ और सांस्कृतिक यथार्थ का संतुलित एवं प्रभावशाली चित्रण मिलता है।

लेखक की रचनात्मक दृष्टि मानवीय होने के साथ-साथ आलोचनात्मक भी है। वह प्रशासनिक भ्रष्टाचार, राजनीतिक अवसरवाद, वन कानूनों की विसंगतियों, ठेकेदारी व्यवस्था, महाजनी शोषण तथा पूँजीवादी विकास मॉडल की आलोचना करते हुए यह स्थापित करता है कि विकास का वास्तविक उद्देश्य मनुष्य और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखना होना चाहिए, न कि किसी समुदाय को उसके अस्तित्व से वंचित करना। इसी कारण उपन्यास केवल कथा नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदना का प्रभावशाली दस्तावेज़ बन जाता है।

'पठार पर कोहरा': कथावस्तु का संक्षिप्त परिचय:

'पठार पर कोहरा' की कथा एक ऐसे आदिवासी अंचल में विकसित होती है जहाँ प्राकृतिक सौंदर्य और जीवन-संघर्ष समानांतर रूप से उपस्थित हैं। पठारी भू-भाग, घने जंगल, पहाड़, नदियाँ और प्राकृतिक परिवेश केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि कथा के सक्रिय पात्रों की तरह उपस्थित हैं।[4] उपन्यास के पात्रों का जीवन प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ है; उनका श्रम, आजीविका, संस्कृति और सामाजिक संबंध इसी परिवेश में विकसित होते हैं।

कथानक के विकास के साथ बाहरी शक्तियाँ—ठेकेदार, महाजन, प्रशासन, खनन कंपनियाँ, राजनीतिक स्वार्थ तथा बाजारवादी व्यवस्था—धीरे-धीरे आदिवासी जीवन में हस्तक्षेप

करती हैं। इसके परिणामस्वरूप उनकी पारंपरिक जीवन-व्यवस्था, सामुदायिक संबंध और सांस्कृतिक संतुलन प्रभावित होने लगता है। भूमि-अधिग्रहण, वन अधिकारों का हनन, बेरोजगारी, विस्थापन, पलायन, सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक असुरक्षा जैसी समस्याएँ कथा के केंद्र में उभरती हैं। लेखक इन घटनाओं को केवल व्यक्तिगत त्रासदी के रूप में नहीं, बल्कि व्यापक सामाजिक और राजनीतिक संरचना के परिणामस्वरूप प्रस्तुत करता है।

उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसकी कथा किसी एक पात्र के इर्द-गिर्द सीमित नहीं रहती, बल्कि पूरे आदिवासी समाज की सामूहिक चेतना, संघर्ष और बदलते सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त करती है। इस प्रकार 'पठार पर कोहरा' हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन का एक सशक्त सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक दस्तावेज़ बनकर सामने आता है।

आदिवासी जीवन का सामाजिक यथार्थ:

'पठार पर कोहरा' उपन्यास आदिवासी समाज के सामाजिक जीवन का अत्यंत सजीव, यथार्थपरक और संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करता है। लेखक ने आदिवासी समुदाय को किसी रोमांचक या रहस्यमयी दृष्टि से नहीं देखा है, बल्कि उनके दैनिक जीवन, सामाजिक संबंधों, सामुदायिक चेतना तथा जीवन-मूल्यों को निकटता से चित्रित किया है।[5] उपन्यास में आदिवासी समाज का सामाजिक ढाँचा परस्पर सहयोग, समानता, श्रम, सामुदायिक उत्तरदायित्व तथा प्रकृति के साथ सह-अस्तित्व की भावना पर आधारित दिखाई देता है। यहाँ व्यक्ति की अपेक्षा समुदाय को अधिक महत्त्व दिया जाता है और जीवन का प्रत्येक महत्वपूर्ण निर्णय सामूहिक सहमति एवं सामाजिक सहभागिता के आधार पर लिया जाता है। यही सामुदायिक चेतना आदिवासी समाज की सबसे बड़ी सामाजिक शक्ति है।

उपन्यास में चित्रित आदिवासी समुदाय का जीवन पारस्परिक विश्वास और सहयोग पर आधारित है। कृषि कार्य, वनोपज का संग्रह, घरों का निर्माण, विवाह, पर्व-त्योहार तथा धार्मिक अनुष्ठान जैसे सभी कार्य सामूहिक श्रम और सहभागिता से संपन्न होते हैं। किसी एक परिवार की समस्या पूरे गाँव की समस्या मानी जाती है और संकट के समय पूरा समुदाय एक-दूसरे के साथ खड़ा दिखाई देता है। यह सामाजिक व्यवस्था आधुनिक शहरी जीवन की प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति से भिन्न एक ऐसे समाज का परिचय कराती है जहाँ सामाजिक संबंध आर्थिक स्वार्थ पर नहीं, बल्कि आत्मीयता, विश्वास और साझी जिम्मेदारी पर आधारित होते हैं।

लेखक ने आदिवासी समाज की सामुदायिक संस्कृति को उसकी सामाजिक पहचान का मूल आधार माना है। उपन्यास में विभिन्न पर्व-त्योहार, लोकनृत्य, लोकगीत, सामूहिक भोज तथा धार्मिक आयोजन केवल मनोरंजन के साधन नहीं हैं,

International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | Website: https://ijaar.co.in/
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

बल्कि सामाजिक एकता, सांस्कृतिक निरंतरता और सामूहिक अस्मिता के प्रतीक हैं। इन आयोजनों के माध्यम से समाज की नई पीढ़ी अपनी सांस्कृतिक परंपराओं, लोकविश्वासों और सामुदायिक मूल्यों से परिचित होती है। इस प्रकार उपन्यास यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना उसकी सांस्कृतिक परंपराओं से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई है।[6]

उपन्यास में आदिवासी परिवारों का चित्रण भी अत्यंत स्वाभाविक रूप में किया गया है। पारिवारिक संबंधों में आत्मीयता, परस्पर सम्मान तथा सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना स्पष्ट दिखाई देती है। परिवार केवल रक्त-संबंधों तक सीमित नहीं रहता, बल्कि पूरा गाँव एक विस्तृत परिवार की तरह कार्य करता है। बुजुर्गों के अनुभवों का सम्मान किया जाता है तथा युवाओं को सामुदायिक जीवन-मूल्यों के अनुरूप जीवन जीने की प्रेरणा दी जाती है। यह व्यवस्था सामाजिक संतुलन बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

लेखक ने आदिवासी समाज में स्त्री की भूमिका को भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण रूप में प्रस्तुत किया है। उपन्यास में स्त्री केवल घरेलू दायित्वों तक सीमित नहीं है, बल्कि कृषि, वनोपज संग्रह, पशुपालन, पारिवारिक निर्णय, आर्थिक गतिविधियों तथा सांस्कृतिक आयोजनों में पुरुषों के समान सक्रिय भागीदारी निभाती है। आदिवासी स्त्रियाँ श्रमशील, आत्मनिर्भर तथा सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने वाली सशक्त व्यक्तित्व के रूप में चित्रित की गई हैं। वे परिवार की आर्थिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाने के साथ-साथ सामाजिक और सांस्कृतिक परंपराओं के संरक्षण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। लेखक इस चित्रण के माध्यम से यह संकेत करता है कि आदिवासी समाज में स्त्री-पुरुष संबंध अपेक्षाकृत अधिक सहयोगात्मक और श्रम-समानता पर आधारित हैं, यद्यपि आधुनिक सामाजिक परिवर्तनों और बाहरी हस्तक्षेपों ने इस संतुलन को भी प्रभावित किया है।[7]

उपन्यास में यह भी स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि आदिवासी समाज की सामाजिक संरचना पर आधुनिक विकास, बाजारवाद, औद्योगीकरण तथा भूमंडलीकरण का गहरा प्रभाव पड़ा है। सड़क, खनन परियोजनाएँ, औद्योगिक प्रतिष्ठान तथा बाहरी व्यापारिक गतिविधियाँ जहाँ एक ओर आधुनिकता का प्रवेश कराती हैं, वहीं दूसरी ओर आदिवासी समाज की पारंपरिक जीवन-व्यवस्था को भी धीरे-धीरे कमजोर करती हैं। बाजारवादी संस्कृति के प्रभाव से सामुदायिक सहयोग की भावना में कमी आने लगती है और व्यक्तिगत लाभ तथा आर्थिक प्रतिस्पर्धा का भाव विकसित होने लगता है। इससे सामाजिक संबंधों की आत्मीयता प्रभावित होती है तथा पारंपरिक सामाजिक संतुलन में परिवर्तन आने लगता है।

लेखक विशेष रूप से इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करता है कि आधुनिक शिक्षा,

रोजगार तथा बेहतर जीवन की आकांक्षा के कारण आदिवासी युवाओं का शहरों की ओर पलायन निरंतर बढ़ रहा है। पलायन केवल आर्थिक समस्या नहीं है, बल्कि इसका प्रभाव आदिवासी समाज की सांस्कृतिक निरंतरता और सामाजिक एकता पर भी पड़ता है। जब युवा पीढ़ी अपने गाँव, भाषा, लोकसंस्कृति तथा पारंपरिक जीवन-मूल्यों से दूर होती जाती है, तब सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण का प्रश्न भी गंभीर रूप से सामने आता है। उपन्यास इस परिवर्तन को अत्यंत संवेदनशील ढंग से चित्रित करता है और यह संकेत देता है कि विकास की वर्तमान प्रक्रिया ने आदिवासी समाज के सामाजिक ताने-बाने को गहराई से प्रभावित किया है।

'पठार पर कोहरा' में सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष आदिवासी समाज और बाहरी शक्तियों के बीच उत्पन्न होने वाला संघर्ष भी है। ठेकेदार, महाजन, प्रशासनिक अधिकारी तथा राजनीतिक प्रतिनिधि आदिवासी समाज की सरलता और अशिक्षा का लाभ उठाकर उनका आर्थिक एवं सामाजिक शोषण करते हैं। परिणामस्वरूप सामाजिक असमानता, असुरक्षा तथा अविश्वास की भावना विकसित होने लगती है। लेखक यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी समाज की अनेक समस्याएँ उसकी आंतरिक कमजोरियों से अधिक बाहरी शोषणकारी व्यवस्थाओं की देन हैं। इसलिए सामाजिक यथार्थ का विश्लेषण केवल आदिवासी समाज के भीतर सीमित न रहकर व्यापक राजनीतिक एवं आर्थिक संदर्भों से भी जुड़ जाता है।

उपन्यास यह भी स्थापित करता है कि आदिवासी समाज का वास्तविक विकास केवल आर्थिक योजनाओं से संभव नहीं है। इसके लिए उनकी सांस्कृतिक पहचान, सामुदायिक जीवन-पद्धति, पारंपरिक ज्ञान-व्यवस्था तथा सामाजिक मूल्यों का संरक्षण भी समान रूप से आवश्यक है। यदि विकास की प्रक्रिया उनकी सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक अस्मिता तथा प्राकृतिक संसाधनों पर अधिकार को नष्ट कर देती है, तो वह विकास उनके लिए विनाश का कारण बन जाता है। इसलिए लेखक आदिवासी समाज के सामाजिक यथार्थ को मानवीय संवेदना, सामाजिक न्याय तथा सांस्कृतिक संरक्षण के व्यापक परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता पर बल देता है।

अतः कहा जा सकता है कि **'पठार पर कोहरा'** में आदिवासी जीवन का सामाजिक यथार्थ बहुआयामी स्वरूप में उभरकर सामने आता है। इसमें आदिवासी समाज की सामुदायिक चेतना, श्रम-संस्कृति, पारिवारिक संबंध, स्त्री की सक्रिय भूमिका, सांस्कृतिक परंपराएँ, सामाजिक एकता, आधुनिक परिवर्तन, पलायन, शोषण तथा सामाजिक संघर्ष जैसे अनेक पक्षों का अत्यंत प्रभावशाली और प्रामाणिक चित्रण किया गया है।[8] यही विशेषता इस उपन्यास को आदिवासी समाज के सामाजिक जीवन का एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक दस्तावेज़ बनाती है।

International Journal of Advance and Applied Research
Peer Reviewed | International Open Access Journal
ISSN: 2347-7075 | Impact Factor – 8.141 | *Website: https://ijaar.co.in/*
Volume-13, Issue-1 | September - October 2025

निष्कर्ष:

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट होता है कि **'पठार पर कोहरा'** केवल आदिवासी जीवन पर आधारित एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि भारतीय आदिवासी समाज के सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक यथार्थ का एक सशक्त और संवेदनशील दस्तावेज़ है। उपन्यास में आदिवासी समुदाय के जीवन को बाहरी दृष्टि से नहीं, बल्कि उनकी जीवन-पद्धति, सांस्कृतिक चेतना, श्रम-संस्कृति, सामुदायिक संबंधों तथा प्रकृति के साथ उनके आत्मीय संबंधों के संदर्भ में अत्यंत प्रामाणिकता के साथ चित्रित किया गया है। लेखक ने यह स्थापित किया है कि आदिवासी समाज का जीवन केवल अभाव, निर्धनता अथवा पिछड़ेपन का पर्याय नहीं है, बल्कि वह समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, सामुदायिक सहयोग, प्रकृति-सम्मत जीवन-दर्शन और मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण एक विशिष्ट सामाजिक संरचना का प्रतिनिधित्व करता है।

उपन्यास का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसमें आदिवासी समाज के संघर्षों को केवल करुणा या सहानुभूति की दृष्टि से प्रस्तुत नहीं किया गया है, बल्कि उनके आत्मसम्मान, सांस्कृतिक अस्मिता, अस्तित्व-बोध तथा अधिकार चेतना को समान रूप से महत्व दिया गया है। लेखक यह स्पष्ट करता है कि आदिवासी समाज की समस्याएँ केवल आर्थिक विषमता तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे जल, जंगल और जमीन पर अधिकार, सांस्कृतिक संरक्षण, सामाजिक न्याय, राजनीतिक भागीदारी तथा सम्मानजनक जीवन के अधिकार जैसे व्यापक प्रश्नों से भी जुड़ी हुई हैं। इसलिए उपन्यास आदिवासी जीवन के यथार्थ को बहुआयामी दृष्टि से प्रस्तुत करता है।

'पठार पर कोहरा' आधुनिक विकास की उस अवधारणा पर भी गंभीर प्रश्नचिह्न लगाता है, जिसके कारण आदिवासी समाज को अपनी भूमि, प्राकृतिक संसाधनों और सांस्कृतिक पहचान से वंचित होना पड़ता है। उपन्यास यह संदेश देता है कि यदि विकास की प्रक्रिया किसी समुदाय की संस्कृति, पर्यावरण और अस्तित्व को नष्ट कर दे, तो वह वास्तविक विकास नहीं, बल्कि सामाजिक अन्याय का रूप है। लेखक विकास और मानवता के बीच संतुलन स्थापित करने की आवश्यकता पर बल देते हुए आदिवासी समाज के अधिकारों और अस्मिता की रक्षा को अनिवार्य मानता है।

साहित्यिक दृष्टि से भी यह उपन्यास अत्यंत महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा, शिल्प, कथानक, चरित्र-चित्रण तथा प्रकृति-वर्णन आदिवासी जीवन की वास्तविकता को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करते हैं। लेखक ने आदिवासी समाज के जीवन-संघर्ष, लोकसंस्कृति, श्रमशीलता, सामुदायिक जीवन-मूल्यों तथा प्रतिरोध की चेतना को जिस संवेदनात्मक गहराई के साथ प्रस्तुत किया है, वह हिंदी के आदिवासी विमर्श को नई वैचारिक दिशा

प्रदान करता है। यह उपन्यास पाठक को केवल आदिवासी समाज की समस्याओं से परिचित नहीं कराता, बल्कि उनके प्रति संवेदनशील, उत्तरदायी और न्यायपूर्ण दृष्टिकोण विकसित करने की प्रेरणा भी देता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि **'पठार पर कोहरा'** हिंदी साहित्य में आदिवासी जीवन के यथार्थ का एक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक आख्यान है। यह उपन्यास सामाजिक असमानता, आर्थिक शोषण, सांस्कृतिक विघटन, विस्थापन तथा अस्तित्व-संकट जैसे प्रश्नों को गहन मानवीय संवेदना और वैचारिक गंभीरता के साथ प्रस्तुत करता है। साथ ही यह आदिवासी समाज की संघर्षशीलता, सांस्कृतिक गरिमा, सामुदायिक चेतना और प्रकृति-केंद्रित जीवन-दृष्टि को भी समान महत्त्व देता है। यही कारण है कि यह कृति न केवल हिंदी के आदिवासी विमर्श को समृद्ध करती है, बल्कि समकालीन भारतीय समाज, संस्कृति और विकास संबंधी विमर्शों को भी नई दृष्टि प्रदान करती है। इस दृष्टि से **'पठार पर कोहरा'** एक ऐसी साहित्यिक कृति है, जो वर्तमान समय में सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक संरक्षण और समावेशी विकास की आवश्यकता को अत्यंत प्रभावी ढंग से रेखांकित करती है।

संदर्भ सूची:

1. संजीव। *पठार पर कोहरा*। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, नवीनतम संस्करण।
2. पाण्डेय, मैनेजर। *साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका*। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2006।
3. गुप्ता, रमणिका। *आदिवासी साहित्य और विमर्श*। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2008।
4. मीणा, हरिराम। *आदिवासी दुनिया*। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2013।
5. मीणा, गंगासहाय। *आदिवासी विमर्श और हिंदी साहित्य*। जयपुर : साहित्यागार, 2015।
6. शर्मा, रामविलास। *साहित्य और समाज*। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन, 2001।
7. सिंह, बच्चन। *हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास*। नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 2009।
8. तिवारी, भोलानाथ। *साहित्य और संस्कृति*। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 2004।